नई सदी में साहित्य को मुस्लिम लेखकों की देन

डॉ. शाज़िया बशीर

उपन्यास मानव जीवन का दर्पण है जिसमें व्यक्ति के बहुमुखी व्यक्तित्त्व को एक व्यापक धरातल पर अभिव्यक्त किया जाता है। उपन्यास समाज और व्यक्ति के बीच एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है या यों कह सकते हैं कि समाज में जब-जब, जहाँ- जहाँ और जैसे-जैसे जो कुछ भी घटित हुआ है उपन्यासों में उसकी झलक अवश्य मिलती है। फिर चाहे वह पौराणिक मूल्यों के विघटन का खेद हो या नवीन मूल्यों की स्थापना के प्रति आक्रोश। अबला नारी की ममता और त्यागम्य छवि से लेकर अबला नारी की क्रान्तिकारी सोच का समर्थन। विभाजन की त्रासदी का मातम हो या विभाजन के पीछे छिपा राजनीतिज्ञों का गंदा और घिनौना स्वार्थ। बलात्कार और यौन शोषण जैसे संवेदनशील विषयों से लेकर बालविवाह तथा सती प्रथा आदि सामाजिक मुद्दों से लेकर भ्रष्ठाचार. भाईभतीजावाद और सत्ता लोलुपता आदि राजनीतिक मुद्दे उपन्यासकारों की पैनी दृष्टि से नहीं बच सके हैं। खैर समाज ने जब-जब करवट बदली है हमारे उपन्यासकार तब-तब उस करवट को अपने उपन्यासों में अमर करते चले गए हैं और हिन्दी साहित्य को इतना विस्तार मिला कि तभी आज हमारा साहित्य अपनी विश्व पहचान रखता है।

हमारा भारत देश अपनी विवधता में एकता के लिए विश्व प्रसिद्ध है। जिस प्रकार सामाजिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक स्तर पर एकता दिखाई देती है उसी प्रकार लेखन कार्य में भी लेखकों ने बिना किसी भेद-भाव के एकता का परिचय देकर सच्चाई और ईमान्दारी से समाज के सभी पहलुओं को पाठकों के समक्ष रखा । जहाँ इतिहासकारो ने भी मौनव्रत धारण किया वहाँ हमारे उपन्यासकार मैदान में सिपाहियों की तरह कलम से जंग लडते देखे जा सकते हैं। जैसे कि देश विभाजन के 70 साल बाद भी जब दोनों देशों के राजनीतिज्ञ एक दूसरे पर विभाजन कराने का आरोप लगाते नहीं थकते और देश की मासूम जनता को हिन्दू -मुस्लिम के नाम पर उकसाने का भरकस प्रयस करते हैं वहीं हिन्दी उपन्यासकारो ने मिलकर अपने-अपने उपन्यासों में उनके गंदे मनसूबों और बीमार मानसिकता को नंगा करने में कोई कसर नहीं छोडी है । जिनमें भीष्म साहनी 'तमस', यशपाल 'झूठा सच', कमलेश्वर 'कितने पाकिस्तान', राही मासूम रज़ा 'आधा गाँव', अमृता प्रीतम 'पिंजर' इत्यादि उल्लेखनीय हैं।

जिस प्रकार उर्दू साहित्य को अनेक हिन्दू लेखकों ने जैसे प्रेमचन्द, कृश्नचन्द्र, फिराक़ गोरखपुरी आदि ने समृद्ध किया उसी प्रकार हिन्दी साहित्य को भी कई मुस्लमान लेखकों ने कुछ अनमोल कृतियाँ भेंट कर अमर कर दिया । जिनमें विशेष रूप से राही मासूम रज़ा, गुलशेर खां 'शानी', इब्राहीम शरीफ़, असग़र वजाहत, मेहरून्निसा परवेज़, नासिरा शर्मा, आबिद सुरती, ख्वाजा बदीउज्ज़मा, अब्दुल बिस्मिलाह, नफीस आफरीदी,

मुबारक खान 'आज़ाद', शाह नसीर फरीदी आदि का नाम लिया जा सकता है जिन्होंने सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक स्तर पर हो रहे सकारात्मक एवं नकारात्मक दोनों प्रकार के बदलावों को समय- समय पर अपने उपन्यासों का विषय बनाया।

युद्ध चाहे तलवार से किया जाए या कलम से। युद्ध युद्ध होता है और सिपाही दोनों होते हैं लेखक भी और आर्मी भी लेकिन फर्क सिर्फ इतना है कि तलवार द्वारा किए गए युद्ध में शत्रु का खून बहता है और कलम द्वारा किया जाने वाला व्यक्ति का अस्तित्व झकझोर कर रख देता है। इसी प्रकार का युद्ध हमारे मुस्लिम उपन्यासकार भी काग़ज़ के मैदान में कलम की सियाही से लगातार लड़ रहे है फिर चाहे वह युद्ध भारतीय जन मानस में विक्षोभ एवं क्रान्ति उत्पन्न करने वाली परिस्थितियों के विरूद्ध हो या समाज में परिव्याप्त अनेक बहुमुखी समस्याओं के प्रति। साथ ही समय-समय पर इन्होंने उन सामाजिक मान्यताओं एंव आस्थाओं को भी नकारा है जो सामाजिक परिवेश के लिए सकारात्मक न थी। मानव समाज की ज्वलंत समस्याओं जैसे जीवन संघर्ष. नये संबंध बोध. बदलते हुए मूल्यों से समाज में पारस्परिक बदलाव एंव उनसे जन्मा अन्तर्विरोध जैसी समस्याओं को प्रमाणिक सन्दर्भों में 'आधा गाँव', 'टोपी शुकला', 'ओस की बूँद', राही मासूम रज़ा 'दो गॉव', मुबारक खां 'आज़ाद' 'सॉप काटे का मन्तर', आबिद सुरती 'कोरजा' मेहरून्निसा परवेज़ आदि उपन्यासों में देखा जा सकता है। जबकि मानव मूल्यों के संक्रमण को एक बडे फलक पर 'तारा' रज़िया फसीह अहमद 'अकेला पलाश' मेहरून्निसा परवेज़ 'फूल तोड़ना मना है' गुलशेर खॉ 'शानी' 'फिर भी अकेले' नफीस आफरीदी आदि के उपन्यासों में देखा जा सकता है।

नारी मन जितना कोमल है उतना ही कठोर भी है और जितना एक नारी दूसरी नारी का दर्द. तकलीफ़ भय, संत्रास, वेदना, घुटन आदि को समझ सकती है उतना शायद ही कोई ओर समझ सकता है। इसीलए तो अधिकतर महिला उपन्यासकार ह्यमुस्लिमह्न मेहरून्निसा परवेज़, नासिरा शर्मा, जमीला हाशमी, रज़िया फसीह अहमद आदि की कृतियाँ महिलाओं की वकालत करती दिखाई देती हैं, पर हमेशा नहीं कहीं- कहीं तो उनकी आधुनिक ठोस नारी कुछ पाने की कोशिश में सबकुछ खो देती हैं और इस प्रकार के नारी पात्रों को 'सात नदियाँ : एक समन्दर', 'तारा', 'आँखों की दहलीज', 'ज़हर का रंग' आदि में देखा जा सकता है। जहाँ सबकुछ बदल रहा है। भारत उन्नति के शिखर पर है , देश की दशा एंव दिशा दोनों बदल रहे हैं और औरत मर्द के कन्धे से कन्धा मिलाकर चलती है। अनेक दिशाओं में प्रगति के विपरीत भी मुस्लिम परिवारों में आज भी औरत की वहीं दयनीय दशा है जो चौदहवीं सदी में थी। मुस्लिम परिवार एंव समाज के कुछ उल्टे - सीधे नियम आज भी मुस्लिम महिलाओं की तरक्की में सबसे बड़ी बाधा बने हुए हैं। और कई पौराणिक रूढ़ियों में बंधा मुस्लिम समाज आज भी इस समाज की महिलाओं के लिए अपमान एंव लांछन का कारण बनी हुई है, जिसे एक

मुस्लिम महिला इसकी इच्छा के विपरीत भी लांघ नही सकती वरन्र उसे इस्लाम के ठेकेदार मुल्ला मौलवी लोग पता नही क्या फतवाह देंगें ।इस प्रकार के अन्याय एंव अमानवीयता को हमारे मुस्लिम उपन्यासकारों ने अपने उपन्यासों में कई जगहों पर उछाला है जैसे 'आधा गाँव' में हर घर में पत्नी के साथ रखैल भी है और इस अन्याय को सहने के लिए सपत्नी बाध्य है वरन्र उसे घर से धक्के मार कर बाहर निकाल दियाँ भी रखेंगे क्योंकि बीबियों के लिए खूबसूरती बिल्कुल भी ज़रूरी नहीं है खूबसूरती तो रंडियों के लिए है"।[1]

उपन्यासकारों ने इन परिवारों में नारी पर हो रहे अमानवीय व्यवहार एंव अत्याचार को 'काला जल' उपन्यास में भी बडे ही सजीव ढंग से प्रस्तुत किया है। 'काला जल' की छोटी फूफी सारा दिन सास के ताने, ससुर की दबी वसना सहने के अतिरिक्त भी मज़दूर की तरह काम करती है और शाम को बची- खुची कसर उसका जानवर पति पूरा करता है " साली, मेरे घर में रहकर मेरे मॉ- बाप से दुश्मनी रखती है। कमा के लाने वाला मैं. खिलाने-पिलाने वाला मैं, तू कौन होती है कि बीच में टांग अडाये रहना है तो सीधी तरह रह वरन्र अपना रास्ता नाप।''[2]

इतना ही नहीं यह आतंक स्त्रियों का स्त्रियों के प्रति भी कुछ कम नहीं है। 'सापं काटे का मंतर'में शकुन्तला देवी अपनी बहू को रात- रात भर मारती रहती है और जब वह अपने पिता से इस बात की शिकायत लगाती है तो अडोसिर्यों-पडोसियों के डर से उसका कायर बाप उसे किस्मत की दुहाई देकर वापिस भेज देता है। "कुत्ता अपने चार पिल्लों को खाता भी है तो चार को सेता भी है। तुम मायूस न हो, वैसे औरत चाहे तो नर्क को भी स्वर्ग बना सकती है।''[3]

नारी की असहायता यहीं पर खत्म नहीं होती। वह केवल ससुराल या समाज में ही बेबस नही है बल्कि उसके अपने घर में भी वह इसी प्रकार की तुच्छ पात्र बनी हुई है। कहीं भाई अपनी कामयाबी के लिए उसे धोखादडी से किसी गैरमर्द की वासना का पात्र बनाता है तो कहीं पिता अपनी काम वासना को पूरा करने लिए अपनी ही बेटी की आबरू को तार- तार कर देता है। एसे समाज में एक औरत कहाँ जाए, किस पर विश्वास करे जिस समाज में उसके रक्षक ही उसके भक्षक बन जाएँ ।इस प्रकार के गंदे एंव घिनौने सच को 'उसका घर' उपन्यास में देखा जा सकता है जहाँ भाई अपने स्वार्थ के लिए अपनी सगी बहन ऐलमा को अपने 'बॉस' की काम वासना का शिकार बनाता है और इस प्रकार अपनी तरक्की की नीवं अपनी बहन की इस्मत पर रख देता है- "हाँ रेश्मा, मुझे पता चला गया।खुद आहूजा ने बताया कि भैया और आहूजा की मिली साज़िश थी जिसमें वे लोग सफल हो गए और मैं मूक जानवर की तरह उनके जाल में फँस गई हँ।''[4]

आज इंसानियत का अर्थ इतना बेजान हो गया है कि बाप की हवस भरी नज़रें अपनी ही बेटी पर आ ठहरती हैं। 'उसका घर'उपन्यास में सोफिया अपने ही पिता की नैतिकता पर प्रश्न उठाती कहती है- "रात को जब

मैं सो गई तो लगा मेरे पास कोई है। पहले तो सोचा कि माँ होगी और तभी कमरे का दरवाज़ा खुला और कमरे की रौश्नी में मैंने देखा माँ खड़ी थी।वह गुस्से से काँप रही है। मैंने भय से आँखें मूँद ली। ओह, तो यह बाप लेटा है। पर यहाँ क्यों लेटा है? इसी प्रकार का अन्य उदाहरण डॉ. खां का बाप है जिसको हवस ने इतना अन्धा किया है कि अपनी ही बेटी के बच्चे का बाप बनता है।

परिवार हमारे सामाजिक जीवन की मूल इकाई है पर आधुनिकता की वजह से जहाँ समाज में बहुत से बदलाव हुए वहीं दैनिक मूल्यों के ह्रास का सबसे बडा कारण भी यही है। आज पिता-पुत्र का, पुत्र माता का, बाप बेटी का, बेटी बाप की , भाई-बहन का, कोई किसी का नहीं है। सब अपना ही स्वार्थ सिद्ध करने में लगे हैं फिर चाहे वह एक दूसरे की बली चढ़ा के ही क्यों न प्राप्त हो। पारिवारिक मूल्यों का हास आज चिन्ता का विषय बनता जा रहा है। आज व्यक्ति परिवार के अनुशासन से अपेक्षाकृत अधिक स्वतन्त्रता का अनुभव कर रहा है क्योंकि वैज्ञानिक चिन्तन के परिप्रेक्ष्य में व्यक्तिवाद का विकास हुआ और समाज को व्यक्ति के सामने निमित्त माना जाने लगा। इसके अतिरिक्त शिक्षा के अत्यधिक प्रसार के कारण व्यक्ति में व्यक्तिवादी भावनाओं का प्रधान्य होता गया जिससे उनमें अहं आवश्यकता से अधिक बढ़ गया और किसी प्रकार का भी अधिकारपूर्ण अनुशासन उन्हेंअपर्याप्त एंव असह्य प्रतीत होता है। बडों के प्रति इस प्रकार का अनादर 'उसका घर' उपन्यास में देखने को मिलता है जिसमें रेश्मा अपनी माँ को धमकाती हुई कहती है- "मामा, अब तुम अपनी ज़बान बन्द करती हो या नहीं? मेरे डैडी की लाश को कौवे नोच-नोच कर खाते थे, तो अब तुम्हें मैं नोच-नोच कर खाऊंगी, समझी।"[5]

इसके साथ ही आज की युवा पीढ़ी ने अनेक प्रकार की समस्याओं एंव असफलताओं जैसे बेरोज़गारी, मानसिक तनाव, शारीरिक कष्ट, यौन समस्याओं, प्रेम में असफलता और व्यक्तिगत उलझनों से परेशान होकर इन समस्याओं को निपटाने का शॉटकट निकाला हैं 'आत्महत्या'। जी हाँ, अगर कुछ न कर सको तो आत्महत्या करो क्योंकि आत्महत्या उन सभी प्रकार की समस्याओं का हल है जो किसी अन्य प्रकार से हल नही हो सकती है और आत्महत्या तो आजकल ट्रेंड बन गया है।इस प्रकार की ज्वलन्त समस्या तथा इसके दुष्परिणामों को कई उपन्यासों में उभारा गया है जैसे 'टोपी शुक्ला' उपन्यास में टोपी मानसिक संघर्ष के शिकार हर उस व्यक्ति का प्रतीक है जो अपनी परिस्थितियों से सामंजस्य स्थापित न करने के कारण आत्महत्या करता है। 'आंखों की दहलीज़' उपन्यास की तालिया भी मानसिक अन्तद्र्वन्द के कारण आत्महत्या करती है परन्तु बच जाती है। 'कोरजा' उपन्यास की कम्मों पत्रकार अमित से बेइन्तहा प्रेम करती है और शादी रचाना चाहती है परन्तु जब उसे पता चलता है कि अमित नपुंसक है तो वह इस सत्य को सहन नहीं कर पाती और अपने गले में रस्सी बाँध कर आत्महत्या करती है।

अब प्रश्न यह उठता है कि टोपी, तालिया और कम्मों जैसे लोगों की आत्महत्याओं और वहां तक ले जाने वाली उनकी नकार्टमेट मानसिकताओं के पीछे का कारण आखिर क्या होता है। किस चीज़ ने इन्हें इतना बड़ा कदम उठाने पर विवश किया? क्या ये अपने हालात के साथ ज़रा सा भी समझौता नही कर सकते थे।करते तो जान बच जाती। और इंसानीयत के नाते सैद्धांतिक या वैवाहिक धरातल पर सोच कर देखेंगे तो आपका दिल यह जानकर ज़रूर टूटेगा कि टोपी, कम्मों और तालिया हम ही हैं। मैं, आप, हम सब और विचार करें की भला हमने अपने हालात से कम्प्रोमाइज़ कभी किया है जो अब करें ।जान जाती है तो जाए पर ईगो और अहम जाए आप और हम सब इसी मुद्दे को डट अपनी जिंगदी मैं खुशी से लागू भी करते हैं और कर रहे भी हैं।

इस प्रकार की वर्णित समस्याओं को दिखाकर उपन्यासकार यह समझाना चाहते हैं कि किसी भी प्रकार की समस्या का समाधान आत्महत्या नहीं। अतः मुस्लिम उपन्यासकारों का रचनात्मक कार्य देखकर यह कहा जा सकता है कि उनके सहयोग के बिना हिन्दी साहित्य अधूरा एवं एकांकी होता। इन उपन्यासकारों का हिंदी उपन्यास साहित्य में योगदान देखते हुए यह तथ्य स्पष्ट हो जाता है कि इन्होंने हिन्दी साहित्य के साथ -साथ समाज को जो नई भेंट अपर्ण की है वह वर्तमान समय एंव स्थिति के लिए प्रेरणादायक हैं और मुस्लिम समाज का जो वर्णन किया है वह भी भारतीय सभ्यता का एक प्रतीक है।

सन्दर्भ:---

1:--- रज़ा.राही मासूम।आधा गावँ. पृष्ठ 115
2 :---'शानी'.गुलशेर खॉ।काला जल. पृष्ठ 116
3:--- सुरती.आबिद।सापँ काटे का मन्त्र.पृष्ठ 36
4 :--- परवेज़.मेहरून्निसा।उसका घर.पृष्ठ 56
5 :--- परवेज़.मेहरून्निसा।उसका घर.पृष्ठ 34

डॉ. शाज़िया बशीर
हिंदी विभाग, कश्मीर विश्विद्यालय
हज़रतबल कश्मीर 190007
जम्मू कश्मीर